64. ''विद्यापति–पदावली'' रामभद्रपुर से प्राप्त पद–85, पृ0 109।
65. ''विद्यापति–पदावली'' प्रथम भाग, पद–112, पृ0 147।
66. ''विद्यापति–पदावली'', दूसरा भाग, तरौनी से प्राप्त पद–184, पृ0 430।
67. (क) वही, पद–122, पृ0 355।
    (ख) वही, पद–134, पृ0 370।
68. ''विद्यापति–पदावली'', प्रथम भाग, पद–89, पृ0 119।
69. वही, पद–113, पृ0 149।
70. वही, पद–134, पृ0 136।
71. वही, पद–182, पृ0 248।
72. ''विद्यापति–पदावली'' दूसरा भाग, रामभ्रदपुर से प्राप्त पद–33, पृ0 42
73. वही, तरौनी से प्राप्त पद–92, पृ0 317।
74. वही, पद–164, पृ0 408।
75. वही, पद–162, पृ0 406।
76. ''विद्यापति–पदावली'' तीसरा भाग, पद–38, पृ0 58।
77. वही, पद–98, पृ0–151।
78. ''विद्यापति–पदावली'', प्रथम भाग, पद–53, पृ–74।
79. ''विद्यापति–पदावली'' दूसरा भाग, तरौनी से प्राप्त पद–16, पृ0–227।
80. वही, पद–47, पृ0 265।
81. वही, रामभद्रपुर से प्राप्त पद–6, पृ0 08।
82. श्री बिमान बिहारी मजुमदार, ''भूमिका'', पृ0–40, ''विद्यापति'', सम्पादकः खगेन्द्रनाथ मित्र तथा बिमान बिहारी मजुमदार, हिन्दी–रूपान्तर कर्त्ता : हरेश्वरी प्रसाद, दि यूनाइटेड प्रेस लि0, पटना, संवत् 2010 वि0।

****

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना एवं विभाजन

डॉ. रूद्र प्रताप सिंह*

कांग्रेस की स्थापना उन ऐतिहासिक परिस्थितियों एवं घटनाओं की देन थी जो 19वीं सदी के द्वितीय अर्द्धभाग में हमारे देश में हो रही थी। लॉर्ड लिटन के अन्यायपूर्ण और दमनकारी शासन कार्यों ने इसकी विकास गति को और भी तीव्रता प्रदान की। अंग्रेज शासकों के अत्याचार, अनाचार, उत्पीड़न एवं शोषण के फलस्वरूप भारतवासियों के दिलों में उठी असन्तोष की लहरों में ज्वार आ गया। देश में राष्ट्रीय जागृति एवं राजनीतिक चेतना एक देशव्यापी संस्थात्मक रूप लेने को मचल उठी। इन्हीं परिस्थितियों के फलस्वरूप 1885 ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।[1]

भारत में राष्ट्रीय जागृति के उद्भव एवं विकास के इतिहास का अध्ययन हमें ज्ञात कराता है कि 1883 ई० के अन्त तक भारत के राजनीतिक विकास एवं ब्रिटिश शासन के विरूद्ध जाग्रत भावनाओं के प्रदर्शन के लिए एक देशव्यापी संगठन की अनुपस्थिति हमारे राष्ट्रवादी नेताओं को खलने लगी थी। उस काल के अनेक प्रान्तीय संस्थाएँ प्रस्तावित देशव्यापी जन–आन्दोलन के लिए सर्वथा अनुपयुक्त थी। अतः तत्कालीन भारतीय नेतागण एक ऐसी राष्ट्रीय सभा की स्थापना की उधेड़बुन में थे, जो समूचे देश की व्यापक राजनीति को अपनी परिधि में ला सके।

कुछ उदारवादी अंग्रेज, जैसे–मि० ए० ओ० ह्यूम भी एक राष्ट्रीय संस्था की स्थापना के पक्षपाती थे जिसके माध्यम से तत्कालीन भारतीय विस्फोटक स्थिति में जाग्रत जन–आन्दोलन की क्रान्तिकारी भावना को वैधानिक प्रवाह में परिणत किया जा सकता। उन्होंने 1 मार्च, 1883 ई० को कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों के नाम एक दिल हिला देनेवाला पत्र लिखकर एक राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की अपील की।

मि० ह्यूम की यह मर्मभेदी अपील व्यर्थ नहीं गयी। बम्बई एवं कलकत्ता के जागरूक नेता सचेत हो परस्पर संगठित होने का यत्न करने लगे। परिणाम यह

*असिस्टेन्ट प्रो0 इतिहास बद्री नारायण महाविद्यालय, इन्दौर वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

हुआ कि 1884 ई० के अन्त में 'भारतीय राष्ट्रीय संघ' (Indian National Union) नामक एक संस्था कायम हुई, जिसका केन्द्र बम्बई रखा गया। यूनियन के संचालकों ने निश्चय किया कि 1885 के अन्तिम मास में पूना में भारत भर के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन बुलाया जाये, जिसमें देश की राजनीतिक समस्याओं पर विचार हो।

विभिन्न राष्ट्रीय समस्या मूलक संस्थाओं और जीवन की हलचल की पृष्ठभूमि में ह्यूम महोदय ने 1885 ई० में लॉर्ड डफरिन से भेंट की और भारत में बढ़ रहे असन्तोष का विवरण उनके सम्मुख प्रस्तुत किया। सरकार असन्तोष का नाम सुनकर घबरा उठी, क्योंकि उसे डर था कि कहीं 1857 से भी भयंकर विद्रोह न उठ खड़ा हो जाये। ह्यूम महोदय ने एक वृहद् राष्ट्रीय संस्था की अनिवार्यता का अनुभव किया जो सरकार तथा जनता की समस्याओं को शान्तिपूर्ण रीति से सुलझा सके और उसकी स्थापना के लिए उन्होंने अपनी धारणा लॉर्ड डफरिन के समक्ष व्यक्त की। लॉर्ड डफरिन को यह प्रस्ताव युक्तियुक्त लगा और उसने विचार–विमर्श के लिए ह्यूम महोदय से इंगलैण्ड जाने का आग्रह किया।[2]

इंगलैण्ड से वापस आने पर 1885 ई० के दिसम्बर के महीने में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई जिसका प्रथम अधिवेशन पूना में किया जाना निश्चित हुआ, किन्तु पूना में प्लेग के फैलने के कारण अधिवेशन बम्बई में हुआ। यह अधिवेशन 28 दिसम्बर को ग्वालिया टैंक रोड स्थित गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कॉलेज के भवन में हुआ। इसके अध्यक्ष वोमेशचन्द्र बनर्जी तथा मंत्री ह्यूम थे। इस अधिवेशन में देश के विभिन्न भागों से 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। वोमेशचन्द्र बनर्जी ने सभापति पद से भाषण देते हुए कहा, 'इससे पहले ऐतिहासिक काल में भारतभूमि पर इतना महत्त्वपूर्ण और विशाल सम्मेलन कभी नहीं हुआ।' पंडित मदन मोहन मालवीय के शब्दों में, 'कांग्रेस में भारत ने अपनी वाणी को प्रकट करने का माध्यम पाया।'

कॉंग्रेस का इतिहास तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम काल सन् 1885 से 1905 तक का है। इस काल में कॉंग्रेस की नीति उदारवादी रही। इसके नेताओं ने ब्रिटिश सम्राट के प्रति विश्वास तथा सहयोग की नीति अपनायी एवं कॉंग्रेस के प्रारम्भिक नेताओं को यह विश्वास था कि वह याचना, स्मरणपत्रों तथा खुशामद से भारतीयों को राजनीतिक अधिकार दिलाने में सफल होंगे। सन् 1892 का कौंसिल एक्ट उदारवादियों की एक महान विजय थी। उदारवादी नेताओं में दादाभाई नौरोजी, श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, फिरोजशाह मेहता, गोपालकृष्ण गोखले आदि प्रमुख थे। दूसरा काल सन् 1906 से 1919 का है। इन 13 वर्षों में कॉंग्रेस के भीतर उग्रवाद तथा धार्मिक पुनरूत्थान की जागृति हुई।

उग्रवादियों ने यह कहा कि भारतीयों को स्वयं अपने पैरों पर खड़े होकर अपनी माँगें पूरी करानी चाहिए। सन् 1907 में सूरत विच्छेद हुआ, जिसमें कॉंग्रेस दो पक्षों – नरम तथा गरम दल में बँट गयी। इन दोनों दलों के मध्य समझौता केवल सन् 1916 में ही हो सका। कॉंग्रेस के इतिहास का तीसरा काल सन् 1920 से 1948 तक का है। यह युग 'गाँधी युग' भी कहलाता है, क्योंकि गाँधीजी ही राजनीतिक क्षेत्र में केन्द्र–बिन्दु रहे।

सन् 1920 का वर्ष भारतीय जनता के लिए असहयोग का संदेश लेकर अवतीर्ण हुआ। कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के उपरान्त गाँधीजी सारे देश में दौरा लगाकर जनता को जागृत कर चुके थे तथा असहयोग का कार्यक्रम उन्हें रूचिकर लगा था। चौरी–चौरा घटना के पश्चात् महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलन की योजना स्थगित कर दी। कांग्रेस कार्यसमिति द्वारा आन्दोलन के आकस्मिक स्थगन से देश में अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों प्रकार की आलोचना हुई।

मार्च, 1922 ई० में महात्मा गाँधीजी के जेल चले जाने के पश्चात् तीन माह तक असहयोग आन्दोलन कार्यक्रम के अनुसार चलता रहा। इसके बाद सत्याग्रह समिति के नाम से एक समिति की नियुक्ति की गयी, जिसका कार्य आगामी कार्यक्रम के विषय में अपना प्रतिवेदन देना था। समिति ने अन्य सिफारिशों के अतिरिक्त सामूहिक सत्याग्रह बन्द करने, उसके स्थान पर प्रान्तीय कांग्रेस समितियों के उत्तरदायित्व पर छोटे रूप में सत्याग्रह किये जाने तथा सरकार का विरोध करने के लिए कौंसिलों में प्रवेश करने की सिफारिशें कीं। कौंसिल प्रवेश के प्रश्न पर कांग्रेस में मतभेद हुआ। 1922 ई० में कांग्रेस के गया अधिवेशन के सभापति श्री देशबन्धु चितरंजन दास चुने गये। अध्यक्ष पद से बोलते हुए श्री दास ने कौंसिल–प्रवेश के सम्बन्ध में तर्क देते हुए कहा कि, 'हम शेर को उसकी माँद में जाकर पराजित करेंगे, खर्च की स्वीकृति नहीं देंगे, निन्दा का प्रस्ताव पारित करेंगे और सरकारी यन्त्र का चलन असम्भव कर देंगे।'[3] श्री राजगोपालाचार्य ने इसका विरोध किया। सरदार पटेल ने भी कहा, 'यदि देश को स्वतंत्र कराना है तो सर्वप्रथम कौंसिल प्रवेश की चर्चा को कूड़ा–करकट की तरह आँगन के बाहर फेंक देना होगा।'[4] डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने अल्प विश्वास भरी वाणी से कौंसिल प्रवेश का विरोध किया। कौंसिल प्रवेश के प्रस्ताव के पक्ष में 890 तथा विपक्ष में 1748 मत आये। इस प्रकार इस अधिवेशन में अपरिवर्तनवादियों ने परिवर्तनवादियों को हरा दिया। चितरंजन दास ने सभापति पद से तथा मोतीलाल नेहरू ने महामंत्री पद से तत्काल त्याग–पत्र दे दिया। 1923 ई० में पुनः हिन्दू–मुस्लिम दंगे हुए तथा देश के राजनैतिक आकाश पर काले बादल मंडराने लगे। अब यह स्पष्ट हो चुका था कि असहयोग आन्दोलन के सिद्धान्तों पर कार्य करना असम्भव होगा।

उपर्युक्त तनाव की स्थिति में चितरंजन दास और पंडित मोतीलाल नेहरू ने इलाहाबाद में 1 जनवरी, 1923 में स्वराज्य पार्टी की स्थापना की और उसके कार्यक्रमों का प्रचार करने के लिए देश का तूफानी दौरा किया।

समझौते के प्रयास –अपरिवर्तनवादियों और स्वराज्यवादियों के बढ़ते हुए वैमनस्य एव फूट को रोकने के उद्देश्य से सितम्बर, 1923 ई० में दिल्ली में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन मौलाना अबुल कलाम आजाद की अध्यक्षता में हुई। इस अधिवेशन में कौंसिल प्रवेश के समर्थकों का यह प्रस्ताव मान लिया गया कि 1923 ई० के होने वाले निर्वाचनों में कांग्रेस के सदस्य भाग ले सकते हैं।

1922 ई० में गाँधीजी को 6 वर्ष की कारावास की सजा मिली थी, परन्तु उनका स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण उन्हें 1924 ई० में ही रिहा कर दिया गया। 1924 ई० के बेलगाँव कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता गाँधीजी ने ही की। यद्यपि गाँधीजी स्वराज्य दल के कार्यक्रम से सहमत नहीं थे, फिर भी असहयोग आन्दोलन के स्थगन के कारण एवं उसे पुनः प्रारम्भ करने की स्थिति में न होने के कारण, गाँधीजी ने मौन रूप से स्वराज्य दल को उसके उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनुमति दे दी। उन्होंने विदेशी माल के बहिष्कार, हाथ से कताई, बुनाई तथा अन्य रचनात्मक कार्यक्रमों पर बल दिया। स्वराज्यवादियों ने गाँधीजी के कार्यक्रम के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट की तथा इस प्रकार दोनों विचारधाराओं के मध्य समझौता हो गया एवं सूरत-विच्छेद की पुनरावृत्ति होने से बच गई।[5]

श्री चित्तरंजन दास एवं पंडित मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में स्वराजिस्ट पार्टी 1923 ई० के सामान्य चुनावों में भाग लेने के लिए मैदान में आयी और उसे आशा से भी अधिक सफलता मिली। बंगाल एवं मध्य भारत में पार्टी को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ। केन्द्रीय विधान मण्डल में 145 स्थानों में से पार्टी ने 45 स्थान प्राप्त कर लिए। इस प्रकार विधान मण्डल में यह पार्टी सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी बनी। इस केन्द्रीय विधान मण्डल में स्वराज्य पार्टी के नेता पंडित मोतीलाल नेहरू थे। बंगाल विधान मण्डल में पार्टी के नेता श्री सी० आर० दास थे। अन्य अनेक प्रान्तों में भी पार्टी बड़े विरोधी दल के रूप में प्रकट हुई।

पंडित नेहरू ने अपनी योग्यता एवं कुशलता से केन्द्रीय विधान मण्डल में स्वतंत्र एवं राष्ट्रवादी सदस्यों को अपने साथ मिलाकर फरवरी 1924 ई० में एक प्रस्ताव भारी बहुमत से पारित कराया। प्रस्ताव इस प्रकार था – 'यह एसेम्बली परिषद् सहित गवर्नर जनरल से सिफारिश करती है कि भारत में पूर्ण उत्तरदायी सरकार स्थापित करने की दृष्टि से 1919 ई० के भारत सरकार अधिनियम में संशोधन करे और इस हेतु निकट भविष्य में भारत के प्रतिनिधियों की एक गोलमेज सम्मेलन बुलायी जाय। यह सम्मेलन अल्पसंख्यक जातियों के हितों को ध्यान में

रखते हुए भारत के लिए नया संविधान बनाये। वर्तमान केन्द्रीय विधान मण्डल को भंग करके नये विधान मण्डल के समक्ष संविधान को स्वीकृति के लिए रखा जाय और फिर ब्रिटिश संसद के समक्ष उसकी स्वीकृति के लिए रखा जाय।'[6]

जब स्वराज्य पार्टी की उपर्युक्त माँग को ब्रिटिश सरकार एवं भारत सरकार ने अस्वीकृत कर दिया, तब पार्टी का सरकार के प्रति दृष्टिकोण अधिक कड़ा तथा असहयोगपूर्ण हो गया। पार्टी ने अब अड़ंगेबाजी की नीति का खुलकर प्रयोग किया। केन्द्रीय विधान मण्डल में 1924–25, 1925–26, 1926–27 के बजटों को स्वीकृत होने से रोक दिया और इस प्रकार बजट की माँगों की स्वीकृति के लिए गवर्नर जनरल को अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग करना पड़ा। दमनकारी अध्यादेश और कानूनों को समाप्त करने के लिए प्रस्ताव पारित किये गये। जिन प्रश्नों पर स्वराज्यवादियों की बात नहीं मानी जाती थी, उन पर वे संसद से बहिर्गमन, वाक्आउट करते थे।

बंगाल के विधान मण्डल में स्वराज्यवादियों का स्पष्ट बहुमत था। मि० दास के नेतृत्व में स्वराज्य पार्टी ने बंगाल में द्वैध शासन को निष्क्रिय बना दिया। पार्टी ने 23 मार्च 1924 ई० को विधान मण्डल में दो मंत्रियों के वेतन का प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया, फलस्वरूप मंत्रियों को त्याग–पत्र देना पड़ा। बंगाल के गवर्नर ने दास को मंत्रिमण्डल बनाने के लिए आमंत्रित किया, परन्तु उन्होंने असहमति प्रकट कर दी। बंगाल की तरह मध्य प्रदेश में भी द्वैध शासन असफल हो गया, परन्तु अन्य प्रान्तों में स्वराज्यवादियों को विशेष सफलता नहीं मिली।

स्वराज्य दल यद्यपि अपनी अड़ंगा नीति में अधिक सफल नहीं हो सका, फिर भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में इसका योगदान अमूल्य है। जिस वक्त देश के राजनैतिक क्षितिज पर निराशा छायी हुई थी, असहयोग आन्दोलन असफल हो चुका था, कांग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम जनता को आकृष्ट करने में सफलता प्राप्त नहीं कर रहा था, स्वराज्य दल ने जनता में राष्ट्रीयता की ज्योति को अक्षुण्ण रखा। सरकार का विरोध करके तथा उसके मार्ग में बाधाएँ उपस्थित करके राष्ट्र में चेतना को जागृत रखने का श्रेय स्वराज्य दल को ही है। इसने सरकार को यह सोचने के लिए बाध्य किया कि द्वैध शासन प्रणाली असफल तथा दोषपूर्ण है।

इन सबके अतिरिक्त भी स्वराज्य दल की नीतियों में स्वभावतया परस्पर विरोध था। सरकार का विरोध कौंसिलों में घुसकर अड़ंगा द्वारा करने की योजना तर्क विहिन था। डॉ० जकारिया का कथन सही प्रतीत होता है कि, 'स्वराज्यवादियो की स्थिति उन व्यक्तियों की सी थी, जो अपनी रोटी को रखना भी चाहते थे और खाना भी। जनता में लोकप्रिय होने के लिए वे उग्रतापूर्ण बातें करते थे, परन्तु

वास्तव में वे संसदवाद के समर्थक थे। परिणामतया जिस पथ का उन्होंने अनुसरण किया, उसमें सहयोग का अर्थ था – असहयोग।'[7]

सन्दर्भ सूची :–

1. त्रिवेदी डॉ० रामनरेश –भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास, पृ० 41
2. भण्डारी एवं डॉ० विमलेश –भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास, पृ० 18
3. शर्मा प्रो० सी० पी० एवं शर्मा श्रीमती शशिप्रभा – भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन, संवैधानिक विकास एवं भारतीय संविधान, पृ० 161
4. भण्डारी एवं डॉ० विमलेश – भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास, पृ० 169
5. भण्डारी एवं डॉ० विमलेश – भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास, पृ० 170
6. शर्मा प्रो० सी० पी० एवं शर्मा श्रीमती शशिप्रभा – भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन, संवैधानिक विकास एवं भारतीय संविधान, पृ० 165
7. जकारिया – सिनेरेस्ट इण्डिया, पृ० 149